ग़दर पार्टी
(1913–18)

लहू में भीगी यादें और देशभक्ति का ऐतिहासिक हिंदी–परिप्रेक्ष्य

प्रदीप सक्सेना

ग़दर पार्टी का झण्डा

ग़दर पार्टी के शताब्दी वर्ष की अंतिम वेला में प्रकाशित हो रहा यह परिप्रेक्ष्य मुख्यतः *चाँद* के 'फाँसी अंक', *हिंदू पंच* के 'बलिदान अंक' और कुछ अन्य शोध-सामग्री के आधार पर रचा गया है। इससे हमारे सामने तत्संबंधित अनुसंधान की नयी सम्भावनाएँ खुलती हैं। प्रदीप सक्सेना का यह आलेख हमें भारतीय राष्ट्रवाद, देशभक्ति और वामपंथ की उन संरचनाओं का अधिक विस्तृत और गहन संधान करने का निमंत्रण देता है जिन्हें अभी तक बीसवीं सदी के महा-आख्यानों के दबाव में नज़रअंदाज़ किया जाता रहा है। इसके ज़रिये साहित्यिक विमर्श की राजनीति से बाहर निकल कर यह भी देखने की आवश्यकता महसूस होती है कि हथियारबंद क्रांति के आदर्श में विश्वास रखने वाली पार्टी के इन मूलभूत भारतीय स्रोतों को हमारे राजनीतिक विमर्श ने क्यों विस्मृत कर दिया? अगर यह विस्मृति सायास है तो यह देखना पड़ेगा कि विलुप्तीकरण के इस बौद्धिक खेल में किसे नेपथ्य में धकेला गया है और किसे मंच पर स्थापित किया गया है?

देशभक्ति की उन बातों को याद दिलाने का संदर्भ है ग़दर पार्टी का शताब्दी वर्ष 2013, और 'मुख्यधारा' के इस सवाल कि 'काश 1857 में पंजाब ने साथ दिया होता' के जवाब में यह सवाल कि 'काश 1913-18 के इस महान् देशभक्तिपूर्ण आंदोलन का मुख्यधारा ने साथ दिया होता'! आख़िर हम क्यों नहीं दे पाते साथ, एक-दूसरे का, जब भी ऐतिहासिक क्षण आता है? जो लोग सोवियत संघ और पूर्वी युरोप के देशों में समाजवाद के विघटन से उत्पन्न अपनी प्रसन्नता छिपाने में नाकाम रहे हैं, उन्हें इस सवाल का जवाब ख़ासतौर से देना होगा। 'ग़दर' से लेकर 'ग़दर-पार्टी' तक (1857-1917) ये लोग आख़िर कहाँ मुँह छिपाये पड़े थे! तब तो कांग्रेस और कम्युनिस्ट दोनों इस हैसियत में नहीं थे कि मुख्यधारा बन सकते या उसका विरोध कर सकते!

अपनी छोटी-सी पुस्तक *व्हाट इज़ हिस्ट्री* की प्रस्तुति ई.एच. कार ने जब 1961 में अंग्रेज़ी में की थी, तब उनका ध्यान इस बात की तरफ़ नहीं जा सका था क्योंकि वे अपने युरोपीय पाठक को, या अंग्रेज़ी-पाठक को सम्बोधित कर रहे थे। लेकिन उसके पंद्रह साल बाद जब भारत आपातकाल की ओर बढ़ रहा था तो इस पुस्तक के हिंदी संस्करण के लिए कार ने यह एक महत्त्वपूर्ण पैराग्राफ़ 'भारतीय पाठकों के लिए' लिखा— 'मेरी पुस्तक *व्हाट इज़ हिस्ट्री* का हिंदी में प्रकाशन मेरे लिए आनंद और सम्मान का विषय है। मैंने इस पुस्तक में जिन ऐतिहासिक व्यक्तित्वों और घटनाओं का उल्लेख किया है, वे ग़ैर-युरोपियों की अपेक्षा से अधिक परिचित हैं। परंतु इस पुस्तक का मूल उद्देश्य है, इतिहास के सिद्धांतों को सामान्यतः और व्यापक स्तर पर व्यवहृत करना और उनके महत्त्व को रेखांकित करना।'[1] वे यह प्रतिपादित करते हैं कि 'अतीत का कोई भी सार्थक अध्ययन निश्चित रूप से भविष्य की अंतर्दृष्टि द्वारा प्रेरित और आलोकित होगा और यह भी कि आज, जबकि विश्व का प्रत्येक देश कठिन आर्थिक-सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा है, 'समय के विस्तार' में मानव जाति की प्रगति की प्रक्रिया पर ही इतिहास की अवधारणा की जानी चाहिए।'[2] क्यों? क्योंकि यदि हम अतीत का गम्भीर और विचारपूर्ण अध्ययन करें तो इतिहास हमें आश्वस्त कर सकता है और उसे करना भी चाहिए कि 'हम ऐसे समय की उत्सुकता से प्रतीक्षा करें जब मानव जाति अपेक्षाकृत स्थायी समाज-व्यवस्था की दिशा में नये उत्साह के साथ अपनी यात्रा के अगले पड़ाव की ओर कूच करेगी और सभ्यता के विकास में ग़ैर-युरोपीय जन (बल हमारा) युरोपियों के कंधे से कंधा मिलाकर समकक्ष भूमिका निभाएँगे, वह भूमिका जिससे गत शताब्दियों में उन्हें वंचित रखा गया है'।[3]

क्या 1976 में रोपे गये इस शुभाकांक्षा के पौधे पर कुछ फूल खिले हैं, या यह पौधा ही अमेरिकी साम्राज्यवाद की तेज़ धूप में मुरझा चला है? यह प्रश्न 2013 में करना अप्रासंगिक नहीं है, क्योंकि ग़ैर-युरोपीय जन अपनी वही भूमिका अभी भी नहीं निभा पा रहे हैं। या, उन्हें निभाने नहीं दी जा रही है।

⧈⧈⧈

कहाँ तो ई.एच. कार ग़ैर-युरोपीय समाज को कंधे से कंधा मिलाकर इतिहास की ज़्यादतियों का पारायण करने की ऐतिहासिक-मार्क्सीय-मानवीय आकांक्षा व्यक्त करते हैं, कहाँ युरोप एशियाई और भारतीय कंधे ही तोड़े डाल रहा है। जैसे कि अंग्रेज़ों की ही 'वैज्ञानिकता' का इसमें कोई सानी नहीं

[1] ई.एच. कार (1976), *इतिहास क्या है* (अनु. अशोक चक्रधर), द मैकमिलन कम्पनी ऑफ़ इण्डिया लिमिटेड, नयी दिल्ली : 1.

[2] वही.

[3] वही.

शहीद करतार सिंह सराभा का पुश्तैनी घर जहाँ आज भी ग़दर पार्टी का झण्डा लहराता है।

'भगतसिंह के बचपन के संस्कारों के बनने में यदि पूरे परिवार का देशभक्त होना एक पक्ष था तो दूसरा पक्ष था भगतसिंह के मन में क्रांतिकारी आंदोलन के प्रति बढ़ता आकर्षण'। इसका आधार था 'करतार सिंह सराभा व ग़दर पार्टी के आंदोलन के प्रति अदम्य आकर्षण'।उनका यानी भगत सिंह का 'जो दृष्टिकोण विकसित हुआ, उस दृष्टिकोण में सराभा की निर्भीक कुर्बानी का बहुत भारी योगदान था'।

है कि सिराजुद्दौला पर तमाम छल-बल आजमाने के बाद भी जब अंग्रेज़ हार गये तो उस वास्तविक हार का बदला लेने के लिए उन्होंने इस ऐतिहासिक सत्य को जन्म दिया, जिसे हम सब और हमारे इतिहासकर 'ब्लैक होल' के नाम से जानते हैं। इसे उन्होंने भारतीयों द्वारा, 'अंग्रेज़ों का हत्याकाण्ड' कहा है। वे कलकत्ते की ही 'अंग्रेज़ी कोठी' के अंदर एक अँधेरी कोठरी जो 18X14 फुट लम्बी-चौड़ी थी उसमें 146 युरोपियन क़ैदियों को बंद कर जून के महीने में, हवा न मिलने से भीषण यातनाओं के बाद 123 शवों का मिलना दिखाते हैं, जिसके बारे में इतिहासकार पण्डित सुंदरलाल दशकों पहले कह चुके थे— 'प्रसिद्ध इतिहास लेखक अक्षयकुमार मैत्र ने अपने बंगाली ग्रंथ *सिराजुद्दौला* में इस क़िस्से की सच्चाई के विरुद्ध अनेक अकाट्य दलीलें जमा की हैं। अव्वल तो इतनी छोटी जगह (267 वर्गफुट) में 146 मनुष्य चावल के बोरों की तरह भी नहीं भरे जा सकते। इसके अलावा सैयद ग़ुलाम हुसैन की *सीअरुल-मुताख़रीन* या उस समय के किसी भी प्रामाणिक इतिहास में, या कम्पनी के रोज़नामचों, 'कार्रवाई के रज़िस्टरों' या मद्रास कौंसिल की बहसों में इस घटना का कहीं ज़िक्र नहीं आता, न अलीनगर (कलकत्ता) के संधिपत्र में उसका कहीं नाम है।'[4] लेकिन हर ब्रिटिश इतिहासकार इस 'ब्लैक होल' के बिना एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ता। बिना छान-बीन के सही पाता है इसे, सही पा रहा है— अभी तक अर्थात् अभी 2002 में कृष्णदत्त ने *कैलकटा : ए कल्चरल एण्ड लिटरेरी हिस्ट्री* में दर्शाया है कि मदर टेरेसा के समय तक लेखन में, बीबीसी की परिचर्चा में यह तथ्य बराबर महत्त्वपूर्ण बना रहा कि सभ्य ब्रिटिशों पर बर्बर भारतीयों ने 'ब्लैक होल' में जो क़हर बरपाया उसी का अंग्रेज़ों ने बदला लिया है। अंग्रेज़ों की बर्बरता पर अनैतिक जंगली, असभ्य भारतीयों को अंगुली उठाने का क्या हक़? (मच सीरियस हिस्टोरिकल रिसर्च ऑफ़ द ईवेंट हैज़ बीन डन, बट स्टिल द डॉमिनेंट पर्सेप्शन इज़ देट ऑफ़ ए ब्लैटेंट ऐट्रोसिटी बाइ द इण्डियंस अगेंस्ट द ब्रिटिश।)[5] सुंदरलाल अंग्रेज़ों के फ़र्ज़ीवाड़े पर चकित हैं! झूठ, मक्कारी, दग़ाबाज़ी और कुप्रचार में, वादा ख़िलाफ़ी, संधि-वचन-भंग सभी में ये माहिर हैं। और ऐसा वे भारत के साथ ही नहीं कर रहे।

---

[4] पण्डित सुंदरलाल (1967), *भारत में अंग्रेज़ी राज,* भाग-1, प्रकाशन-विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली : 134.

[5] कृष्णदत्त (2002), *कैलकटा : अ कल्चरल ऐंड लिटरेरी हिस्ट्री,* रोली बुक्स, नयी दिल्ली : 15.

एच.डी. लसवेल ने *प्रोपेगैण्डा टैक्नीक इन वर्ल्ड वार* में इंग्लैंड के इसी हुनर पर प्रकाश डालते हुए दिखाया है कि अंग्रेज़ इसमें अद्वितीय हैं। 1914–19 के महायुद्ध के समय उन्होंने हॉलवेल के ब्लैक होल की तरह जर्मनी पर आरोप लगाये थे कि उसने बेल्जियम के ग़रीब नन्हे बच्चों के हाथ काट डाले हैं। उनकी आजीविका का प्रबंध किया जाए। इस ख़बर के संबंध में युद्ध के समाप्त होने तक इटली के प्रधानमंत्री सीन्योर निटी ने तहक़ीक़ात की और बताया— 'युद्ध के बाद एक धनाढ्य अमेरिकी ने अपना एक दूत इस उद्देश्य से बेल्ज़ियम भेजा कि जिन ग़रीब बालकों के नन्हे-नन्हे हाथ काट डाले गये हैं, उनकी जीविका का प्रबंध कर दिया जाए। इस दूत को कहीं एक भी इस तरह का बालक नहीं मिल सका। मैंने और लॉयड जॉर्ज ने मिलकर इन भीषण इलज़ामों की सत्यता का पता लगाने के लिए विस्तृत छानबीन की। इनमें से कम-से-कम कई इलज़ामों के साथ लोगों और जगहों के नाम तक हमें बताये गये थे, किंतु हमारे छानबीन करने पर ये तमाम क़िस्से झूठे निकले!'[6] या इसी प्रकार, इस प्रचार को देख सकते हैं कि 'जर्मनी में एक कारख़ाना खुला है जिसमें सिपाहियों की लाशों को उबाल कर उनसे साबुन और ग्लिसरीन बनाया जाता है। इस कारखा़ने के फ़ोटो तक अंग्रेज़ी अख़बारों में छपे थे!'...

प्रचार में उनका कोई मुक़ाबला नहीं था। ... इसी क्रम में उन्होंने प्रवृत्ति-अनुसार ग़दर-पार्टी के नायकों को ठग, बदमाश, डकैत, हत्यारे, लुटेरे साबित किया और 'जनता के हित में' उन्हें गोली से उड़ा दिया या फ़ाँसी पर लटका दिया।

यह इतना दृढ़ प्रचार था कि मंत्री सर ऑस्टिन चैम्बरलेन को यह निर्देश देना पड़ा— 'आई ट्रस्ट दिस फ़ॉल्स रिपोर्ट विल नॉट अगेन बी रिवाइंड'।[7] ज़ाहिर है, प्रचार में उनका कोई मुक़ाबला नहीं था। साम्राज्यवादी शक्तियाँ इस अफ़वाह-उत्पादन पर अरबों डॉलर ख़र्च करती रही हैं। इससे उन्हें समाजवाद को गिराने में और पूँजीवाद को पुनर्जीवन प्रदान करने में बहुत मदद मिली है। इसी क्रम में उन्होंने प्रवृत्ति-अनुसार ग़दर-पार्टी के नायकों को ठग, बदमाश, डकैत, हत्यारे, लुटेरे साबित किया और 'जनता के हित में' उन्हें गोली से उड़ा दिया या फ़ाँसी पर लटका दिया। 'श्री काशीराम' के बारे में *चाँद* के 'फाँसी अंक' में ऐसा ही विवरण दिया गया है कि आप उन्हीं 'सप्तऋषियों' में से एक थे जिन्हें न्यायप्रिय सरकार ने फ़ीरोज़पुर ज़िले में एक गाँव के पास मारे जाने वाले थानेदार की हत्या के अपराध में सदा के लिए भारत की गोद से उठा लिया था और अंत में वास्तविक अपराधी के मिल जाने पर केवल इतना कहकर कि 'जो सात मनुष्य पहले फाँसी पर लटकाये गये थे, वे वास्तविक अपराधी न थे और असल अपराधी तो यह है, जिसे हम आज फाँसी दे रहे हैं'[8] टिप्पणीकार ब्रिटिश प्रचार और भारतीय जन पर टिप्पणी करता है— 'जिनके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व कौड़ी के समान लुटा दिया, और जिनके दुखों से कातर हो, रोती हुई वृद्धा माता की इक़लौती गोद को सूनी कर उन्होंने संन्यासी का वेश धारण किया था, उन्हीं गाँव वालों ने उनकी फाँसी पर यह कहकर खुशी मनाई कि सरकार बहादुर ने डाकुओं को फाँसी पर चढ़ाकर हम पर बड़ा अहसान किया।'[9] (बल हमारा) दुःख है :

विप्लवियों के जाने का है यही ढंग!
जाना है— 'अनवैप्ट, अनऑनर्ड, अनसंग'!![10]

यहाँ आशय यही स्पष्ट करना है कि ब्रिटिश इतिहास-लेखन में सशस्त्र प्रतिरोध एक आपराधिक

[6] सुंदरलाल, वही : 12.

[7] वही : 13.

[8] *चाँद* (1928/2002), 'विप्लव-यज्ञ की आहुतियाँ', चतुरसेन शास्त्री (सम्पा.) : 263.

[9] वही : 264.

[10] वही : 264.

बंदे मातरम

ग़दर दी गूँज

देश भगताँ दी बाणी

हिंदोस्तान दे हथ बिच ग़दर दी तेग़

गदर दी पुस्तकाँ दी लड़ी नंबर 1

युगंतर आश्रम विचों छापके मुफ़त भजी जांदी है

सानफ्रांसिस्को : अैमरीका

पैहली बार सन् 1914 10,000 पोथी

कर्म था और अपराधी सिर्फ़ फाँसी के हक़दार थे। फिर चाहे मामला 'ग़दर' (1857) का हो या ग़दर पार्टी आंदोलन (1913-18) का।

回回回

अभी स्वाधीनता प्राप्ति तक, राष्ट्रीय इतिहास-लेखन में भी ग़दर-पार्टी के इतिहास का कोई प्रश्न नहीं था। उसके बाद के क्रांतिकारी मैदान में थे। गाँधीजी मैदान में थे। नेहरू और कांग्रेस, गरमदल और वामदल मैदान में थे। ग़दर-पार्टी मिट चुकी थी— वह एक आंदोलन थी इस पर इतिहासकारों ने आज भी मुहर नहीं लगाई है। यूँ भी उपनिवेशवाद विरोधी चीज़ों पर हमारे इतिहासकार काफ़ी सोचते हैं। सशस्त्र विरोध हो तब तो कलम और भी थर्राती है लेकिन हिंदी की कितनी भी लानत-मलामत की जाए अंग्रेज़ी के विपरीत यह काम हिंदी की ओर से ही हुआ। सर्वप्रथम हुआ और ज़ोरदार ढंग से हुआ। यह अलग बात है कि वह भी इतिहासकारों के बीच बहस के केंद्र में नहीं रहा! जो लोग इस पर ध्यान केंद्रित कर रहे थे, उनके दृष्टिकोण अपनी तरह से क्रांतिकारी थे। कई उनमें स्वयं सीधे क्रांतिकारी थे और ग़दर-पार्टी के नेताओं से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे। कहना न होगा, अभी तक *चाँद* का 'फाँसी अंक' ही वह प्रथम पुरोहित है जिसने 'विप्लव-यज्ञ में डाली गयी आहुतियों' से ग़दरियों को, उनके लक्ष्य और पार्टी को भरपूर सम्मान दिया। यानी उनके बलिदानों पर रोशनी डाली और फाँसी के फंदों तक पहुँचने की उनकी यात्रा का खुला विवेचन किया। आज उसका ऐतिहासिक महत्त्व स्थापित हो चुका है।

अभी तक *चाँद* का 'फाँसी अंक' ही वह प्रथम पुरोहित है जिसने 'विप्लव-यज्ञ में डाली गयी आहुतियों' से ग़दरियों को, उनके लक्ष्य और पार्टी को भरपूर सम्मान दिया। ... आज उसका ऐतिहासिक महत्त्व स्थापित हो चुका है।

यह नवम्बर, 1928 की बात है। जब तक कोई समाज विज्ञानी, शोधार्थी या इतिहासकार इससे पूर्व की सामग्री पेश नहीं करता तब तक 'फाँसी अंक' ही ग़दर पार्टी की प्रथम प्रतिश्रुति है, ऐसा मानना होगा।[11] एक देशभक्ति पूर्ण आंदोलन को एक भावुक क्रांतिकारी सम्पादक की यह श्रद्धांजलि 'क्रांतिकारी बनो' की अनुगूँज के साथ मूल्यांकन का प्रस्ताव करती है। यहाँ अपनी देव सभ्यता पर इतराने और देव-पुत्र, पुत्री होने वाले विचार इन कठोर पंक्तियों के आगे निस्तेज हो गये हैं। हम कौन हैं? 'हम क्यों अपने बलिदानी वीरों को, देशभक्त भाइयों को, फाँसी का फंदा स्वयं गले में डाल लेने वालों को इतनी ज़ल्दी भुला बैठे?' क्योंकि— 'हम नंगे हैं, भूखे हैं, रोगी हैं, निराश्रय हैं, हम थके हुए, मरे हुए और तिरस्कृत हैं, हम स्वार्थी, पापी और भीरु हैं, हम पूर्वजों की अतुल सम्पत्ति का नाश करने वाली संतान हैं, बच्चों को भिखारी बनाने वाले माता-पिता हैं! रूढ़ि की वेदी पर स्त्रियों को बलिदान का पशु बनाने वाले पुजारी हैं!! हम ख़ानदानी बाप के कुकर्मी बेटे हैं!!!'[12]

आत्मालोचन का यह स्वर 1928 में सशस्त्र प्रतिरोध की राष्ट्रीय आंदोलन में जगह की माँग करता है। यह विवेचन कितना मूल्यवान है! इससे तो पता चलता है कि जब-जब ऐतिहासिक क्षण आता है हम क्रांति में एक-दूसरे का साथ नहीं देते। जो भाग लेते हैं क्रांति में, हम उनसे, न केवल दूर भागते हैं, उन्हें जल्दी से जल्दी भुला देने में ही अपनी कुशलता समझते हैं। और जब ऐसा है तो 'फिर

---

[11] वही.

[12] वही, विनयांजलि : 1.

हम अँधेरे में ही क्यों न रहें? अँधेरे में ही क्यों न मुँह छिपाएँ? हमारी ग़ैरत क्या यह नहीं कहती कि हमारे लिए यही ग़नीमत है कि हम अनंत-काल तक तारागणों से हीन— चैतन्यहीन घोर अंधकारमयी अमावस्या की रात में मुँह लपेटे पड़े रहें! उस अंधकार को ग़नीमत समझें जिसने हमारी नग्नता को, हीनता को, और मलिनता को छिपा रखा है!! और जिसे हमारी मलिन निस्तेज ज्योति सह गयी है!!!'[13] अंक आह्वान करता है— 'प्यारी बहिनो, माताओ, भाइयो और बुर्ज़ुर्गो! 'फाँसी अंक' को दिवाली की अमावस्या समझिये! देखिये, इसमें बीसवीं शताब्दी के हुतात्मा के दिये कैसे टिमटिमा रहे हैं, और देखिये, स्थान-स्थान पर कैसी ज्वलंत अग्नि धाँये-धाँये जल रही हैं, और सबके बीच में जाग्रत-ज्योति-मृत्यु सुंदरी कैसा शृंगार किये छमछमाकर नाच रही है? पूजो! भाग्यहीन भारत के राज्य-पाट, अधिकार-सत्ता और शक्तिहीन नर-नारियो, यही तुम्हारी गृहलक्ष्मी है। यह मृत्यु-सुंदरी, यही अक्षय-यौवना, यही महा महिमामयी!!! महामाया! तुम इसे प्यार करो, इससे परिचय प्राप्त करो, इसे वरो, तब? तुम देखोगे कि ज्यों ही यह तुम्हारे गले का फंदा होने के स्थान पर हृदय का लाल तारा बनेगी, तुम्हारी सहस्रों वर्ष की ग़ुलामी दूर हो जाएगी?'[14]

इस भावुक, काव्यात्मक आह्वान का वैचारिक आधार आगे 'सम्पादकीय विचार' में तैयार किया गया है। उपशीर्षक 'क्रांतिवाद' के तहत कि 'यह ग़ुलामी तभी दूर होगी, जब भारत के जन क्रांति को समझेंगे'। अपनी परम्परागत-रूपकात्मक अभिव्यक्तियों की ये कतरनें सँजोने योग्य हैं : 'क्रांति एक स्थिर सत्य है। पर यह बात सर्वथा असम्भव है कि सत्य सब अवस्थाओं में मधुर और दर्शनीय हो।'[15] 'क्रांति भी सत्य का एक भीषण रूप है। वह चाहे जैसी भी भयानक क्यों न हुई हो, सदा सत्य की पवित्रता और शांति की पुनर्रचना के लिए ही होती है।'[16] 'क्रांति एक बड़ा डरावना शब्द है। शांतिप्रिय लोग चाहे वे कितने ही सम्पन्न और सशक्त क्यों न हों, क्रांति के नाम से डरते हैं।'[17] 'कोई राजसत्ता चाहे कैसी ही उदार क्यों न हो, उसने क्रांति को तत्क्षण बलपूर्वक दबा देने के लिए कड़े-से-कड़े क़ानून पहले ही से बना रखे हैं'।[18] मतलब यह कि 'राजा और प्रजा दोनों ही क्रांति के नाम से काँपते हैं और क्रांति के बीज को तत्काल नष्ट कर देने में सबसे अधिक व्यग्रता और तत्परता दिखाते हैं'।[19]

अवश्य ही यह क्रांति-दर्शन व्यक्तिगत है लेकिन यह साम्राज्य के सशस्त्र प्रतिरोध को रेखांकित करता है। और रूपक के माध्यम से ही सही उसके ऐतिहासिक महत्त्व को प्रतिपादित करता है। उससे नैसर्गिक ऊर्जा प्राप्त करता है।

सम्पादक चतुरसेन शास्त्री यह मानते हैं कि 'निस्संदेह क्रांति ईश्वरीय विधान है— वह न स्वार्थ है और न पाप'।[20] कोई भी क्रांतिकारी 'वेतन के लोभ से, पद-वृद्धि अथवा किसी अन्य स्वार्थ-आकांक्षा से प्रेरित हो, क्रांति कभी नहीं करता, प्रत्युत क्रांति करके, वह भारी से भारी त्याग करके, भारी से भारी ज़ोखिम अपने सिर पर ले लेता है। संसार का कोई भी स्वार्थी, कपटी और पापिष्ठ व्यक्ति कभी इतना आत्मत्याग, परिश्रम और अध्यवसाय नहीं कर सकता, जितना क्रांति का साधारण सिपाही स्वेच्छा से और आनंदपूर्वक कर लेता है'।[21] सम्पादक ने सुकरात, ईसा मसीह, श्रीकृष्ण,

---

[13] वही, विनयांजलि : 1.
[14] वही, विनयांजलि : 1.
[15] सम्पादकीय विचार, 'क्रांतिवाद' उपशीर्षक : 8.
[16] वही : 9.
[17] वही : 9.
[18] वही : 9.
[19] वही : 9.
[20] वही : 9.
[21] वही : 9.

दयानंद और ऐसे ही लोगों को क्रांतिकारी कहा है।[22] उन्होंने कहा है कि 'इनकी क्रांति मिथ्या विश्वासों के विरुद्ध थी, जिसके कारण समाज का आत्मबल और विचारधारा कुण्ठित और प्रभाशून्य हो गयी थी और जनता भीरु और मूर्ख बन रही थी'।[23] तब इन लोगों ने समाज का कल्याण किया था। लेकिन आगे वे नये युग को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यहाँ तो बात ऐसे क्रांतिकारियों की है— जो तलवार लेकर राजसत्ताओं के विरोध में आवाज़ उठाकर मर मिटे।[24] 'अमेरिका, युरोप और एशिया के ऐसे असंख्य वीरों के नाम इतिहास के पृष्ठों में चमक रहे हैं'।[25] जबकि भारत अपने ऐसे वीरों का सम्मान नहीं कर पा रहा है। उन्हें ठग, डाकू, लुटेरे वग़ैरह समझता है, जैसा कि ब्रिटिश सत्ता उन्हें दर्शाती है। फिर भी जानना होगा कि क्या भारत में भी ऐसे कुछ इतिहास के पृष्ठ हैं? जिन पर क्रांतिवीरों के नाम चमक रहे हैं? क्या ऐसे कुछ नाम हैं जो राजसत्ता के विरुद्ध तलवार सूँत कर खड़े हो गये और मर मिटे? शास्त्रीजी खुले आम 1928 में ये नाम लेते हैं: हम उन्हीं पवित्र नामों में सर्वथा बदनाम सन् 1857 की भारत-क्रांति के नायक धुंधुपंत नाना साहेब, और पंजाब तथा बंगाल के फाँसी पाये हुए और काले पानी की नारकीय यातनाओं को भोगे हुए कुछ नवयुवकों को भी, और जिनकी रस्सी का ख़ून अभी भी गीला है, उन काकोरी के प्यारों को भी गिनेंगे, जिन्होंने आज तक अपने उन भाइयों से कृतज्ञता तथा सहानुभूति नहीं प्राप्त की, जिनके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व वीरतापूर्वक बलिदान किया था।[26] अर्थात् वे 1857 से काकोरी को जोड़ते हैं।

क्या 1928 में ऐसा सम्पादकीय लिखना साहस का काम नहीं था? जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़ तलवारें उठाईं उनको आदर देना क्या साधारण काम था? सम्मान के योग्य नहीं था? या प्रगति के पक्ष में नहीं था? क्या 'फाँसी अंक' ज़ब्त हुए बिना रह सकता था? या रहा? क्या 1857 से लेकर ग़दर-पार्टी और क्रांतिकारी दलों का संबंध यहाँ जोड़ा नहीं गया। एक अनवरत शृंखला— 1857—1913—18 तक! क्या काकोरी के नायक शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, शिव वर्मा ने इस अंक में योगदान नहीं किया था?

सवाल यह भी है कि क्या प्रगतिशील, कम्युनिस्ट और साम्राज्यवाद-विरोधी साहित्य में इस अंक को वह जगह मिली, जिसका कि वह हक़दार था? स्वयं रामविलास शर्मा के साम्राज्यवाद-विरोधी पचास वर्षीय अभियान में यह मील का पत्थर कहाँ दिखाई दिया? सशस्त्र संग्राम प्रेमी चिंतक भी गोबर पट्टी की इस भेंट को मान नहीं दे पाये। नामवर सिंह से तो चलो यह आशा नहीं थी। सशस्त्र संग्राम को इतिहास में अपेक्षित जगह क्यों नहीं मिली? बलिदान को अपना मूल्य कैसे मिल सकता है, फिर? यह इतिहास दृष्टि का सवाल है।

शायद इसीलिए यह कहा जा सकता है— कि 'हमारी इतिहास-चेतना में दरारें हैं'।[27] और कि शोध के बिना आलोचना अपंग हो जाती है— कि इतिहास लेखन को तथ्यों और दृष्टि का संगम होना चाहिए और कि निष्ठा के बिना ज्ञान बेकार है। हो सकता है सशस्त्र संग्राम की यह उपेक्षा संयोग या अतार्किक हो लेकिन है यह इतिहास का मूल्यवान-स्वर्णिम पृष्ठ! काव्य और गद्य दोनों ही इससे गरिमामय हुए हैं।

---

[22] वही : 9.
[23] वही : 9.
[24] वही : 9.
[25] वही : 10.
[26] प्रदीप सक्सेना : 'हमारी इतिहास चेतना में दरारें', *वरिमा-2,* अक्टूबर-2011, लखनऊ : 10.
[27] *चाँद* (फाँसी अंक) (नवम्बर, 1928/2002), सम्पा. चतुरसेन शास्त्री : 244-322.

غدر

The Organ of the Gadar party

ہندوستان

Editor Hindustan Gadar San Francisco Box 16

ग़दर अख़बार (उर्दू), खण्ड 1, 22 मार्च, 1914

'फाँसी अंक' का विशेष खण्ड है— 'विप्लव यज्ञ की आहुतियाँ'। उस समय अर्थात् 1928 तक इतने ग़दरवीरों के बारे में सूचनाएँ जुटाना और उनके उद्देश्यों से हिंदी-जगत को परिचित कराना एक ऐतिहासिक कार्य था। 'आहुतियों' के क्रम को भी विशेष दृष्टि से रखा गया है— 'कूका विद्रोह के बलिदान, चापेकर बंधु, कन्हाईलाल दत्त, सत्येंद्र कुमार बसु, मदनलाल ढींगरा, अमीरचंद, अवधबिहारी, भाई बालमुकुंद, बंसतो कुमार विश्वास, भाई भाग सिंह, भाई वतन सिंह, मेवा सिंह, पं. काशीराम, राधा सिंह, करतारसिंह सराभा, वी.जी.पिंगले, जगत सिंह, बलवंत सिंह, डॉक्टर मथुरा सिंह, बंता सिंह, रंगा सिंह, उत्तम सिंह, बाबू हरिनाम सिंह, सोहन लाल पाठक, देशभक्त सूफ़ी अम्बा प्रसाद, भाई रामसिंह, भानसिंह, यतींद्रनाथ मुखर्जी, नलिनी वाक्च्य, अधम सिंह, गेंदालाल दीक्षित, खुशीराम, गोपीमोहन साहा, धन्ना सिंह, बंता सिंह, बर्याम सिंह धुग्गा, किशन सिंह गड़गज्ज, संता सिंह, दलीप सिंह, नंद सिंह, कर्मसिंह, राजेंद्र नाथ लहरी, रोशन सिंह, और अशफ़ाकुल्ला ख़ाँ'।[28] कहना होगा कि

[28] लता मिगलानी (2012), 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' ग्रंथमाला में *स्वतंत्रता संग्राम 'ग़दर गाथा'— 'ग़दर पार्टी' का इतिहास.*
[29] चतुरसेन शास्त्री, वही : 246.

युगांतर-आश्रम सैनफ्रांसिस्को के ग़दर-प्रेस में *ग़दर* तथा उसके अतिरिक्त *ग़दर दी गूँज* इत्यादि अनेक पुस्तकें छपतीं और बँटती गयीं। ... फ़रवरी, 1914 में ही स्टॉकन की सार्वजनिक सभा में तिरंगा झण्डा फहराया गया ...।

इनमें से अधिकांश विप्लवियों का संबंध 'ग़दर आंदोलन' से था। ग़दर पार्टी के शताब्दी वर्ष में इनकी एक सूची बनाने का सामान्य प्रयास 'ग़दर गाथा' में किया गया है।[29]

'फाँसी अंक' ने अभी वर्गीकरण नहीं किया था। उसका आधार था— फाँसी! जिन्हें अंग्रेज़ों ने फाँसी पर लटका दिया था उनके बारे में हिंदी-जगत को सही सूचना देना। साथ ही श्रद्धा निवेदन करना। देशवासियों को यह बताना कि 'जो लोग तुम्हारे लिए कोड़े खाते रहे, फाँसी पर झूले तुमने उन्हीं लोगों को भुला दिया!' 1928 में ही जब भुला दिया तो 2013 में याद करना और भी कठिन है!

सम्पादकीय में भी यह शिक़ायत थी ही कि हम कितने गिर गये हैं! लेखों और टिप्पणियों में भी है। पहली टिप्पणी 'विप्लव यज्ञ की आहुतियाँ' में 'कूका-विद्रोह के बलिदान' पर है। उसका अंत भी इन्हीं शब्दों में है— 'आज लोग इन हुतात्माओं को भूल चुके हैं, उन्हें मूर्ख और उतावले, पथ-भ्रष्ट तथा आदर्शवादी बतलाते हैं, परंतु कहाँ हैं आज वह उत्साह और साहस? कहाँ है वह निर्भीकता और तत्परता? आज कितने हैं, जो उसी प्रकार हँसते हुए फाँसी के तख़्ते पर प्राण दे सकेंगे।'[30] भाई भागसिंह पर छद्म नाम 'नटवर' से लिखी गयी टिप्पणी में पहली बार कुछ सूचनाएँ मिलती हैं— 'प्रसंगवश इसी बीच अमेरिका से *ग़दर* अख़बार निकलना प्रारम्भ हुआ'।[31] उस समय भाग सिंह जी ने जी खोल कर रुपये-पैसे से इस पत्र की सहायता की थी। 'इतना ही नहीं, वरन् संयुक्त प्रांत से निकलने पर भी *ग़दर* अख़बार तथा उसकी नीति का प्रचार अधिकांशतया कनाडा में ही हुआ'।[32] इसी प्रकार श्री रहमत अली शाह पर लिखी टिप्पणी में कहा गया है कि, 'आपने अवसर हाथ आया देख, वहीं पर ग़दर के संबंध में एक व्याख्यान दे डाला'।[33] लेकिन इस तरह की सूचना से ग़दर के बारे में यह तो पता चलता है कि हाल ही कोई 'ग़दर' हुआ था जो 1857 के ग़दर से भिन्न था।

लेकिन ग़दर अख़बार भी था और आंदोलन भी और पार्टी भी और इसका उद्देश्य क्या था- वग़ैरह बातों की जानकारी नहीं मिलती। इस फाँसी अंक की सबसे मूल्यवान टिप्पणी है— 'श्री करतार सिंह' पर।[34] आधुनिक इतिहास के विद्यार्थियों के लिए श्री करतार सिंह का नाम बहुत ही परिचित और प्रेरक रहा है लेकिन 'करतार सिंह सराभा' के नाम से। 'रणचण्डी के उस परम भक्त बाग़ी करतार सिंह की आयु उस समय 20 वर्ष की भी न होने पायी थी, जब उन्होंने स्वतंत्रता देवी की बलिवेदी पर निज रक्तांजलि भेंट कर दी'।[35]

अमेरिका गये तो पढ़ने थे, लेकिन देशप्रेम का प्याला पी बैठे! स्वतंत्रता ही आकांक्षा, स्वप्न और संघर्ष बन गयी। राष्ट्र-राष्ट्रीयता और देशभक्ति की बहुत-सी परिभाषाएँ दी-की गयी हैं लेकिन करतार सिंह ने अपने दिल में समाई पंजाबी गीत की धुन में पिरोई यह परिभाषा दी—

---

[30] वही : 258.
[31] वही : 263.
[32] वही : 263.
[33] वही : 266.
[34] वही : 266.
[35] वही : 268.

सेवा देश दी जिंदड़िए बड़ी औखी
गल्लां करनीआं ढेर सुखल्लियाँ ने।
जिन्ना देश सेवा विच पैर पाया,
उन्ना लक्ख मुसीबतां झल्लियाँ ने।[36]

'सच है, मेरे जीवन! देश की सेवा काम ही बड़ा बेढंगा है। बातें करने में क्या, आनंद ही आनंद! लेकिन जिसने देश-सेवा में पैर फँसा दिया उसकी मुसीबतों का कोई अंत नहीं है'। और करतार सिंह ने सिर-पैर सब फँसा दिया था देश-सेवा में। और देश-सेवा भी कैसी? साम्राज्यवाद से सीधी सशस्त्र मुठभेड़! टिप्पणी ग़दर से सराभा को जोड़ती है : 'युगांतर-आश्रम सानफ्रांसिस्को के ग़दर-प्रेस में *ग़दर* तथा उसके अतिरिक्त *ग़दर दी गूँज* इत्यादि अनेक पुस्तकें छपतीं और बँटती गयीं। प्रचार ज़ोरों से होता गया। जोश बढ़ा। फ़रवरी, 1914 में ही स्टॉकन की सार्वजनिक सभा में तिरंगा झण्डा फहराया गया (ग़दर का तिरंगा), तभी स्वतंत्रता, समानता, और भ्रातृत्व के नाम पर शपथें ली गयीं। उस सभा के प्रभावशाली वक्ताओं में तरुण करतार भी थे'।[37] 'घोर परिश्रम तथा गाढ़े पसीने की कमाई को देश की स्वतंत्रता के लिए ख़र्च करने का निश्चय सभी श्रोताओं ने घोषित कर दिया। ऐसे ही दिन बीत रहे थे, कि एकाएक युरोप में महाभारत (प्रथम विश्व-युद्ध) छिड़ने का समाचार मिला'।[38]

इसी समाचार ने 'ग़दर' आंदोलन के सफल होने की सम्भावनाओं की बौछार कर दी। आनंद और उत्साह की सीमा न रही। एकाएक सभी गाने लगे—

चलो चल्लिए देश नूँ युद्ध करन।
एहो आख़िरी वचन ते फ़र्मान हो गये।।[39]

यह टिप्पणी 'बलवंत' ने लिखी थी।

सराभा ने कोर्ट में यही कहा— 'मेरे अपराध के लिए मुझे या तो आजीवन कारागार का दण्ड मिलेगा, या फाँसी! परंतु मैं तो फाँसी को ही श्रेय दूँगा। ताकि शीघ्र ही फिर जन्म लेकर भारत-स्वतंत्रता युद्ध के लिए तैयार हो जाऊँ। जब तक भारत स्वतंत्र न होगा, तब तक ऐसे ही बार-बार जन्म धारण कर फाँसी पर लटकता रहूँगा, यही अभिलाषा है। और यदि पुनर्जन्म में स्त्री बना तो भी अपने ऐसे विद्रोही पुत्रों को जन्म दूँगा'।[40]

इससे महान् भावना 1916 में और उसके बाद भी दिखाई नहीं पड़ी। दोहराई जा सकी यह ज़रूर रहा। सवाल है, यह 'बलवंत' कौन थे यह लंबे समय तक अज्ञात रहा।

भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़ का प्रथम संस्करण जब राजकमल प्रकाशन से 1986 में आया था उस समय 'शहीद करतार सिंह सराभा' का दस्तावेज़ शामिल करते समय डॉ. चमन लाल और जगमोहन सिंह ने उसके ऊपर केवल ये पंक्तियाँ दी थीं (शहीद करतार सिंह सराभा का चित्र भगत सिंह अपने पास रखते थे और कहा करते थे— 'यह मेरा गुरु, साथी व भाई है'। उनका प्रेरणास्रोत समझने के लिए यह लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है—सम्पा.)[41] लेकिन 2004 में जब आधार प्रकाशन से चमन लाल ने *भगतसिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज़* का प्रकाशन किया तो भूमिका[42] — 'भारतीय क्रांतिकारी चिंतन का प्रतीक : भगतसिंह' में यह स्पष्ट किया कि 'भगतसिंह के बचपन के संस्कारों के बनने में

---

[36] वही : 268.
[37] वही : 268.
[38] वही : 268.
[39] वही : 271.
[40] जगमोहन सिंह एवं चमनलाल (1986) (सम्पा.), *भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़,* राजकमल प्रकाशन : 114.
[41] चमन लाल (2004) (सम्पा.), *भगतसिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज़,* आधार प्रकाशन, पंचकूला : 13.
[42] वही : 14.

बिल्कुल ही समांतर चाँद के *हिंदू पंच* चल रहा था। यहाँ मामला 'फाँसी' का न होकर 'बलिदान' का था। बलिदान भी वह जो हिंदुओं ने किया था क्योंकि विशेषांक *हिंदू पंच* का ही तो था।

यदि पूरे परिवार का देशभक्त होना एक पक्ष था तो दूसरा पक्ष था भगतसिंह के मन में क्रांतिकारी आंदोलन के प्रति बढ़ता आकर्षण'।[43] इसका आधार था 'करतारसिंह सराभा व ग़दर पार्टी के आंदोलन के प्रति अदम्य आकर्षण'।[44] उनका यानी भगतसिंह का 'जो दृष्टिकोण विकसित हुआ, उस दृष्टिकोण में सराभा की निर्भीक कुर्बानी का बहुत भारी योगदान था'।[45] क्योंकि 'ग़दर पार्टी के कार्य-कर्त्ताओं पर मुक़दमे के दौरान करतार सिंह सराभा को नाबालिग होने के कारण जज कम सज़ा देना चाहते थे, किंतु सराभा ने अपनी प्रखर देशभक्ति का अदालत में ऐसा ज्वलंत प्रदर्शन किया कि जजों के सामने उसे भी फाँसी की सज़ा देने के सिवाय कोई चारा नहीं बचा। करतार सिंह सराभा ने इस सज़ा के लिए जज को धन्यवाद तक कहा'।[46] '19 वर्ष की आयु में सराभा को जब फाँसी दी गयी तो उसका वज़न बढ़ गया था'।[47] और वह हँसते हुए फाँसी चढ़ा था। 'यही सराभा भगतसिंह का भी आदर्श था जिसका चित्र वह हमेशा जेब में रखते थे। और उस पर उन्होंने चाँद के फाँसी अंक में लेख भी लिखा'।[48] क्या यह विचारधारात्मक मुद्दे से अलग कोई चीज़ है? इसकी पुष्टि इस तरह 2004 में चमन लाल एवं जगमोहन सिंह ने की कि फाँसी अंक के लेखक 'बलवंत' अपने भगतसिंह ही थे। उनसे पहले इसकी पुष्टि 'ठाकुर राम सिंह कालेपानी' ने भी की थी।[49]

◘◘◘

'फाँसी अंक' में हम देखते हैं कि नायकों के माध्यम से 'ग़दर-दल' का उल्लेख मिलता है। कुछ विस्तृत उल्लेख भगत सिंह द्वारा करतार सिंह सराभा पर लिखे गये संस्मरण में है। लेकिन अलग से 'ग़दर-दल' पर प्रकाश डालने वाला कोई लेख नहीं है। यह उस अंक की सीमा है। लेकिन इन उल्लेखों से यह पता चलता है कि हिंदी बुद्धिजीवी जो 'प्रगति' के विचार' को पसंद करते थे, क्रांतिकारियों के त्याग और बलिदान के प्रति सजग थे, या उनके नायकत्व में श्रद्धा रखते थे और देशप्रेम को जीवन की आधारशिला मानते थे, वे खोजते-खोजते 'ग़दर-दल' तक जा पहुँचे थे। लेकिन क्योंकि मामला 'फाँसी' पर केंद्रित था तो दूसरी तरह की सूचनाएँ, तथ्य और विश्लेषण सम्भव नहीं थे। लेकिन बिल्कुल समांतर ही चाँद के *हिंदू पंच* चल रहा था। यहाँ मामला 'फाँसी' का न होकर 'बलिदान' का था। बलिदान भी वह जो हिंदुओं ने किया था क्योंकि विशेषांक *हिंदू पंच* का ही तो था।[50] इसमें क्रांतिकारियों की शृंखला जो कवर पर सचित्र प्रस्तुत की गयी है वह 1857 से शुरू की गयी है। यानी 'पहले ग़दर' से, क्रम है— 'लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, यतींद्र मुखर्जी, पिंगले, राजेंद्र लाहिड़ी, रामप्रसाद, रोशन सिंह, अशफ़ाकउल्ला, सत्येंद्र बसु, कन्हाईलाल, खुदी राम, प्रफुल्ल चाकी और मैना'।[51] लेकिन भीतर एक बहुत मार्के का

---

[43] वही : 14.
[44] वही : 14.
[45] वही : 14.
[46] वही : 14.
[47] वही : 15.
[48] रामसिंह काले पानी (1988), *ग़दरी जीवन*, भगतसिंह संस्थान, आगरा.
[49] *हिंदू पंच* (बलिदान अंक) (1930/1977), सम्पा. कमलादत्त पाण्डेय.
[50] वही, आवरण.
[51] वही : 166.

लेख है— 'लाला हरदयाल का ग़दर दल'।[52] 'ग़दर' से ग़दर–दल तक लगभग साठ लोगों के बलिदान पर सामग्री तो हिंदू क्रांतिकारियों से संबंधित है लेकिन 19 विदेशी बलिदानों पर अत्यंत दृष्टिसम्पन्न सामग्री दी गयी है जिसमें महर्षि कार्ल मार्क्स, लेनिन के भाई, आयरिशों, बोलशेविकों के बलिदान भी शामिल हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य अन्य महत्त्वपूर्ण सामग्रियों पर केंद्रित न करके ग़दर–दल पर प्रस्तुत लेख पर प्रकाश डालना है, जिसे हम हिंदी में 'ग़दर–दल' पहले विस्तृत उल्लेख के रूप में ग्रहण कर रहे हैं। यह लेख भाई ज्ञान सिंह का है, शीर्षक है :

'देशभक्त लाला हरदयाल का 'ग़दर' दल। बंगाल में जर्मन–षड्यंत्र का सूत्रपात।'[53]

यहाँ 1930 में हमें महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देखने को मिलती हैं जो कि ब्रिटिश भारत में दमन और आंतक के दौर में जुटाना और प्रकाशित करना एक जोख़िम भरा, साहसपूर्ण और कठिन कार्य था। क्योंकि ग़दर–दल और आंदोलन को ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने उसी तरह कुचल दिया था जैसे 1857 के ग़दर को। वैसा ही दमन यहाँ भी किया गया था।

ज़ाहिर है 'फाँसी अंक' की तरह 'बलिदान' अंक की भी एक–एक प्रति ब्रिटिश सरकार ने ज़ब्त कर ली थी। अंतराल देखा जा सकता है कि फाँसी अंक 1928 के बाद 2004 में और बलिदान अंक 1930 के बाद 1997 में ही फिर से प्रकाशित हो सका था। लेख के आरम्भ में ही यह सही सूचना प्राप्त होती है : 'सन् 1915 के अगस्त मास में फ्रेंच पुलिस ने अंग्रेज़ सरकार को ख़बर दी, कि युरोप में रहने वाले हिंदुस्तानी क्रांतिकारियों का यह विश्वास है, कि भारत में शीघ्र ही भीषण क्रांति होने वाली है और इस क्रांति को भड़काने में जर्मनी अपनी पूरी शक्ति से सहायता देगा'।[54]

फ्रेंच पुलिस से यह सूचना मिलते ही अंग्रेज़ सरकार के कान खड़े हो गये; क्योंकि उस समय तक अंग्रेज़ सरकार बिल्कुल बेख़बर थी।[55] इसके बाद लेखक समस्त भीषण घटनाओं की जानकारी देता है जो पर्याप्त पुष्ट सूचनाओं पर आधारित है। फाँसी अंक में ग़दर–पार्टी के नायक हरदयाल पर सामग्री नहीं दी जा सकी थी। क्योंकि 'तकनीकी' अर्थ में उन्हें फाँसी पर नहीं लटकाया गया था। यहाँ वह गुंजाइश निकल आयी जो वहाँ नहीं थी, यानी फाँसी नहीं— बलिदान! जो कि हरदयाल जैसे महान नायक ने दिया था। लेखक कहता है कि यहाँ पर 'देशभक्त लाला हरदयाल एम.ए. का भी कुछ परिचय देना अप्रासंगिक न होगा। ये नरपुंगव पंजाब के निवासी थे।... प्राय: सभी परीक्षाओं में प्रथम होते थे। उनके दिमाग़ की यह विशेषता थी कि एक बार वे जिस पुस्तक को पढ़ लेते थे, वह उन्हें शब्दश: कण्ठस्थ हो जाती थी। एमए में भी जब वे प्रथम हुए तो सरकार ने उन्हें अधिक धन की छात्रवृत्ति देकर इंग्लैंड पढ़ने भेजा था'।[56] 'सरकार समझती थी, कि सरकारी छात्रवृत्ति से पढ़ा हुआ युवक अंत में सरकार की ही ग़ुलामी करेगा। और वास्तव में उस सरीखा धुरंधर विद्वान पुरुष जिस क्षेत्र में कार्य करता, खूब सफल होता। वे जज, कलेक्टर, मंत्री, सेनापति या गवर्नर तक होने की योग्यता रखते थे।'[57] सही प्रश्न किया है लेखक ने— 'पर देश–प्रेम के नशे से मतवाले लाला हरदयाल किसी सरकार की ग़ुलामी क्यों करते'?[58] ये सूचनाएँ हैं और सही हैं : 'सन् 1914 ई. में जब जर्मन महासमर आरम्भ हुआ, तब लाला हरदयाल अमेरिका में पहले से 'ग़दर' दल संगठित कर रहे थे'।[59]

---

[52] वही : 166.
[53] वही : 166.
[54] वही : 166.
[55] वही : 168.
[56] वही : 168.
[57] वही : 168.
[58] वही : 169.
[59] वही : 169.

नायक केंद्रित होने के कारण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर उनका ध्यान कम ही गया है। विशेषकर हिंदी में। शायद यह दबाव भी काम कर रहा हो कि ग़दर-पार्टी के मुख्य नायक पंजाब के थे और सिख थे।

इसी नाम का उन्होंने वहाँ से एक अख़बार भी निकाला था, जो प्राय: समस्त भारतीय भाषाओं में लिखा जाता और भारत में गुप्त रूप से बाँटा जाता था।[60] 'उस समय अमेरिकन सरकार ने भारतीय क्रांतिकारियों को बड़ी क्रूरता से दबाया। उन पर वहाँ एक मुक़दमा भी चलाया था, जिसमें कई क्रांतिकारियों को फाँसी और निर्वासन दण्ड मिला था।'[61]

क्रांतिकारियों में संयत, संयमी, दृढ़ और विनम्र शिव वर्मा ने जब 'क्रांतिकारी आंदोलन का वैचारिक विकास— चापेकर बंधुओं से भगतसिंह तक'[62] अपना दृष्टि सम्पन्न लेख लिखा उस समय तक भी क्रांतिकारियों के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में योगदान को लेकर इतिहासकार और समाज-विज्ञानी गम्भीर नहीं थे। आज तो और भी कम दिखाई दे रहे हैं। आंदोलनकारी चिंतकों का आवेशपूर्ण लेखन व्यक्तिगत शौर्य पर सदैव ही अधिक बल देता रहा है। नायक केंद्रित होने के कारण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर उनका ध्यान कम ही गया है। विशेषकर हिंदी में। शायद यह दबाव भी काम कर रहा हो सकता है कि ग़दर-पार्टी के मुख्य नायक पंजाब के थे और सिख थे। इसलिए भी कॉमरेड शिव वर्मा के इस लेख का असाधारण महत्त्व है। इस लेख को चमनलाल ने अपने राजकमल प्रकाशन वाले संस्करण में शामिल करके विशेषकर पेपर बैक संस्करण में हिंदी-पाठक-जगत की वैचारिक सेवा की है।[63]

ग़दर-पार्टी का ऐतिहासिक गठन और विचारधारात्मक ऊँचाई तभी समझ में आ सकती है जब हम उससे पहले के क्रांतिकारी नेताओं के वक्तव्यों पर एक नज़र डालें। जैसे कि तिलक के इस शानदार वक्तव्य पर : 'अगर चोर हमारे घर में घुस आयें और हमारे अंदर उनको बाहर निकालने की ताक़त न हो तो हमें बेहिचक दरवाज़ा बंद करके उनको ज़िंदा जला देना चाहिए'।[64] क्यों? क्योंकि 'ईश्वर ने हिंदुस्तान के राज्य का पट्टा ताम्रपत्र पर लिखकर विदेशियों को तो नहीं दे दिया है'।[65] 'कुएँ के मेढक की तरह अपनी दृष्टि को संकुचित मत करो, ताज़ी रात-ए-हिंद की क़ैद से बाहर निकलो, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अत्यंत उच्च वातावरण में पहुँचो और महान् व्यक्तियों के कार्यों पर विचार करो'।[66] ध्यान रहे कि तिलक का यह वक्तव्य 12 जून, 1897 का है। इस वक्तव्य के ठीक 10 दिन बाद 22 जून, 1897 को चापेकर भाइयों ने रैंड व ऐवर्स्ट को मार दिया। तो प्रतीत हो सकता है कि यह तिलक के वक्तव्य का प्रतिफल था। लेकिन अगर हम इतिहास में जाएँगे तो पायेंगे कि '1894 में ही चापेकर भाइयों ने पूना में शारीरिक और सैनिक प्रशिक्षण के लिए 'हिंदू-धर्म अवरोध निवारण समिति' क़ायम कर रखी थी जिसे 'हिंदू संरक्षण समिति' भी कहा जाता था'।[67] यह समिति हर साल नियमपूर्वक शिवाजी व गणपति समारोह आयोजित करती थी। इन समारोहों में चापेकर भाई 'श्लोकों' में कैसी भावना व्यक्त करते थे इसे निम्नलिखित 'श्लोकों' से समझा जा सकता है : 'भांड की तरह

---

[60] वही : 169.
[61] चमनलाल एवं जगमोहन सिंह (1991) : वही.
[62] वही.
[63] शिव वर्मा (1991), चमनलाल एवं जगमोहन सिंह द्वारा सम्पादित वही की प्रस्तावना : 18
[64] वही : 18.
[65] वही.
[66] वही : 18.
[67] वही : 18.

शिवाजी की कहानी दुहराने मात्र से स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती। आवश्यकता इसकी है कि शिवाजी और बाजी की तरह तेज़ी के साथ काम किये जाएँ। आज हर भले आदमी को तलवार और ढाल पकड़नी चाहिए— यह जानते हुए कि हमें राष्ट्रीय संग्राम के युद्ध क्षेत्र में जीवन का जोख़िम उठाना पड़ेगा'।[68] श्लोक स्पष्ट कहता है : 'हम धरती पर उन दुश्मनों का ख़ून बहा देंगे जो हमारे धर्म का विनाश कर रहे हैं। हम तो मारकर मर भी जाएँगे, लेकिन तुम औरतों की तरह सिर्फ़ कहानियाँ सुनाते रहोगे'।[69]

पराकाष्ठा के लिए शिवाजी श्लोक से भी आगे गणपति श्लोक को शिव वर्मा ने उद्धृत किया है। इसका स्पष्ट आह्वान है : 'अफ़सोस तुम ग़ुलामी की ज़िंदगी पर शर्मिंदा नहीं हो; जाओ आत्महत्या कर लो। उफ़ ! यह कमीने कसाइयों की तरह गाय और बछड़ों को मार रहे हैं; उसे (गौ को) इस संकट से मुक्त कराओ; मरो लेकिन अंग्रेज़ों को मारकर, नपुंसक होकर धरती पर बोझ न बनो। इस देश को हिंदुस्तान कहा जाता है; अंग्रेज़ भला किस तरह यहाँ राज कर रहे हैं ?'[70] यह क्रांति का स्वरूप था ग़दर-पार्टी से पहले। उदग्र और व्यग्र/व्यक्तिगत। इसका सार था 'ग़ुलामी की अपमानजनक स्थिति के सामने समर्पण करने से बेहतर है चोट करना और नष्ट हो जाना'।[71] देखना होगा कि ग़दर-पार्टी का एजेंडा गाय और बछड़े की राजनीति से बहुत आगे है। लेकिन यह भी मानना होगा कि 'भारतीय क्रांतिकारियों ने, अकल्पनीय कठिनाइयों के बीच भी, आधुनिक युग की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी ताक़त को चुनौती देने की ज़ुर्रत की'।[72] श्रेय देना होगा व्यक्ति को भी। नायक भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी विचारधारा।

जानना ही चाहिए कि ग़दर-पार्टी इससे आगे की चीज़ कैसे थी ? शिव वर्मा ने सही रेखांकित किया है कि 'क्रांति के बाद स्थापित होने वाली सरकार की रूप-रेखा क्या होगी, दूसरे देशों की क्रांतिकारी शक्तियों के साथ उनके संबंध क्या होंगे, नयी व्यवस्था में धर्म का स्थान क्या होगा, आदि प्रश्नों पर उस समय के अधिकांश क्रांतिकारी स्पष्ट नहीं थे।'[73] यह सूरत 1913 तक ज़ारी रही। 1913 में 'ग़दर-पार्टी का गठन क्रांतिकारी आंदोलन के विकास की दिशा में एक बहुत बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण क़दम था।' क्योंकि इस आंदोलन ने राजनीति को धर्म से मुक्त किया और धर्म-निरपेक्षता को अपनाया। धर्म को निजी मामला घोषित कर दिया गया।[74] *ग़दर* अख़बार ने हिंदू-मुसलमान दोनों का आह्वान किया कि वे आर्थिक मसलों पर ज़्यादा ध्यान दें क्योंकि उनका दोनों के जीवन पर एक जैसा प्रभाव पड़ता है। जैसा कि सोहन सिंह जोश ने दर्शाया है कि ग़दर-पार्टी ने यह समझ विकसित की कि 'समस्या हिंदू बनाम मुसलमान की नहीं बल्कि भारतीय बनाम अंग्रेज़ शोषकों की है। हिंदू-मुस्लिम एकता को इतना मज़बूत बनाया जाना चाहिए कि कोई उसे तोड़ न सके।'[75] यह वही आधारशिला है जिस पर 1857 का ग़दर टिका हुआ था। कहना न होगा कि ग़दर-पार्टी 'धर्म-निरपेक्षता में विश्वास करती थी और ठोस हिंदू-मुस्लिम एकता की तरफ़दार थी। वह छूत और अछूत के भेदभाव को भी नहीं मानती थी। भारत की एकता और भारत के स्वाधीनता संग्राम के लिए एकता, ये ही उसे प्रेरित

---

[68] वही : 18.
[69] वही : 18.
[70] वही : 23.
[71] वही : 23.
[72] वही : 24.
[73] वही : 25.
[74] वही : 25.
[75] वही : 25.

करने वाले प्रमुख सिद्धांत थे।[76] सही कहा है सोहन सिंह जोश ने कि इस मामले में ग़दर-पार्टी उस समय के भारतीय नेताओं से मीलों आगे थी— 'ग़दर के क्रांतिकारी राजनीतिक-सामाजिक सुधार के सवालों पर अपने समसामयिकों से आधी सदी आगे थे।[77]

असफलताएँ अनैतिहासिक नहीं होतीं, यह हम क्यों नहीं मानते? वे ही अगली प्रगति का आधार बनती हैं। क्या नहीं? इतिहासकार अधिकतर सफलताओं पर बेहतर ढंग से केंद्रित करते रहे हैं।

'ग़दर-दल' के महान चरित्र के बारे में ही जब हमें हमारे हिंदी-जगत को सटीक जानकारी नहीं है तो हम उसके प्रचार एवं ललित साहित्य के बारे में कैसे जान सकते हैं? समाज, राजनीति, विचारधारा किसानों की तकलीफ़, ग़ुलामी की वेदना, दमन और यंत्रणाएँ, अपीलें, गीतों के बोल और बैंत छंद में बहती 'लहू में भीगी यादें' हमारी क्रांतिकारी विरासत हैं। राष्ट्रीय साहित्य की अमूल्य धरोहर! विशाल देश और अनेक भाषाओं का समृद्ध साहित्य, लंबे संस्कृति-युग और अभियान, संवेदना और ज्ञान, संघर्ष और बलिदान जिस भारतीय साहित्य के मणि-रत्न हैं उनमें ग़दर साहित्य का भी अपूर्व योगदान और महत्त्व है। अभी तो हम 1857 के शहीद शायरों को ही 'हिंदी-नवजागरण' में जगह नहीं दिला पाये हैं तो 'ग़दर लहर दी कविता' या 'वारतिक' को कहाँ जगह होगी। साम्प्रदायिक राजनीति से अधिक सामाजिक सोच में मज़हबी और जातिवादी अलगाव हमें अपने से भिन्न कुछ भी सुंदर मानने नहीं देता। वह हमारे साहित्य के इतिहास-लेखन की दृष्टि को भी विकृत करता रहा है। आचार्य शुक्ल की बात मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं अपने शिखर चिंतक रामविलास शर्मा की बात कह रहा हूँ कि 1857 से हिंदी-जाति और हिंदी नवजागरण की सैद्धांतिकी जब वे विकसित कर रहे थे तब वे नहीं सोच रहे थे कि हिंदी-नवजागरण के प्रथम चरण—1857 में क्या उर्दू शायरों का कोई योगदान होगा या नहीं? जब संघर्ष हिंदू और मुसलमानों की एकता का प्रतीक है जब साथ-साथ लहू बहाया गया है, क्षेत्र भी हिंदी-प्रदेश ही नहीं, दिल्ली है, तो नवजागरण अलग-अलग क्यों? उर्दू वाले भी इसे स्वीकार नहीं करते, रामविलास शर्मा भी नहीं, तो ये क्रांतिकारी शायर जो हाथ में तलवार लेकर लड़े थे वे किस परम्परा में रखे जाएँगे? क्या वे प्रतिक्रियावादी परम्परा के लेखक हैं? उनके साहित्य से किस तरह की ऊर्जा प्रस्फुटित हो रही है? भारतेंदु तो अभी लेखक नहीं बने थे, 'यह 1863 का वर्ष था। अभी ग़दर हुए दो ढाई वर्ष ही बीते थे कि *फ़ुग़ाने देहली* के नाम से उर्दू शायरों का एक ऐतिहासिक काव्य-संग्रह प्रकट हुआ।'[78] इस संग्रह में 'सदरुद्दीन 'आजुर्दा', नवाब मुस्तफ़ाखान 'शेफ़्ता', नवाब शहाबुद्दीन ख़ाँ 'साक़िब', नवाब जियाउद्दीन, अहमद ख़ाँ नय्यर 'दरख़्शां', हक़ीम आग़ा जान 'ऐश', मिर्ज़ा क़ुर्बान अली 'सालिक', मिर्ज़ा दाग़, सय्यद ज़हीरुद्दीन 'ज़हीर', काज़ी फज़ल हुसेन 'अफ़सुर्दा', मुहम्मद अली 'तिश्ना', हक़ीम मुहम्मद तक़ी 'सोज़', मिर्ज़ा बाकर अली ख़ाँ 'क़ामिल', हाफिज़ ग़ुलाम दस्तग़ीर 'मुबीन' तथा हक़ीम मुहम्मद मुहसिन 'मुहसिन' शामिल थे।[79] क्या ये सभी शायर साम्राज्यवाद विरोध की शर्त पूरी नहीं करते हैं? फिर इनकी जगह हिंदी नवजागरण में क्यों नहीं है?

---

[76] वही : 25.

[77] प्रदीप सक्सेना (2012), *हमारे इतिहास में 1857*, शिल्पायन प्रकाशन, नयी दिल्ली : 25.

[78] वही : 25.

[79] ठाकुर रामसिंह 'काले पानी' (1970), *ग़दरी जीवन पुस्तिका*, आगरा : 33 (मूल पंजाबी पद के लिए देखें, चमनलाल, *ग़दर पार्टी नायक— करतारसिंह सराभा*, नैशनल बुक ट्रस्ट : 75.

न अलीगढ़ आंदोलन में है। क्यों? क्या क्रांतिकारी साहित्य की कोई सैद्धांतिकी बनाई गयी है? प्रगतिशील लेखक संघ से पहले प्रगति क्या रुकी हुई थी? ऐसे प्रश्न हमें घेर लेते हैं। इनका उत्तर साहित्येतिहास लेखन के नये गवाक्ष खोलने के लिए हमें प्रेरित कर सकता है? क्या इससे यह पता नहीं चलता कि हमारी राष्ट्रीय चेतना कितनी कमज़ोर है? जिस तरह झाँसी की रानी पर कितने ही गीत और कविताएँ रची गयी थीं, उसी तरह करतार सिंह सराभा को भी लोग सपनों और स्मृतियों में काव्य के द्वारा सँजोये हुए थे। वे टुकड़े, मुखड़े और छंद कितने सुंदर हैं :

ऐ दर्द दिल कोई ऐसा गीत सुना, जिसमें वतन और वतन का प्यार हो।
हिंद के चमन का ऐसा नक़्शा बाँध दे, कि पंछी चहकें और खिली गुलज़ार हो।
हर तरफ़ से वतन की आवाज़ आये, गहन सुरों में प्रेम की तार हो।
प्रेम की कोई ऐसी चिंगारी जला कि वतन वालों को वतन का ख़याल हो।
हमें करतारसिंह का जलवा बता, कभी बाँके शेर का दीदार हो वो।
कहीं पे वह बदजात फ़िरंगी को मार रहा हो, कहीं ग़दर अख़बार निकाल रहा हो।
कहीं पे मुल्क का दर्द बाँटने के लिए गले में फंदा डाल रहा हो।
जंगल, खेत, बस्ती–बियावान में, करतार–करतार की गूँज हो रही हो'।[80]

न केवल नायकों पर गीत हैं, ग़दर की पूरी विचारधारा ग़दर दी गूँज की सातों लड़ियों में लंबे बैंत छंदों में उपलब्ध है। इसे हम अर्थात् राजनीतिक कविताओं को 'प्रतिरोध के सौंदर्यशास्त्र' की आधार–सामग्री के रूप में देख सकते हैं।[81] करतार सिंह की प्रिय पंक्तियाँ थीं—

हिंद दे बहादुरों, किअं, बैठे चुप्प जी
अग्ग लगी देश ना सहारो धुप्प जी
बुझनी इह तां ही है, मगर भज्ज के
बणी सिर शेरां दे की जाणा भज्ज के[82]

(हिंद के बहादुरो, क्यों चुप बैठे हो, देश में आग लगी है, धूप मत सहारो। यह आग तभी बुझेगी, जब इसके पीछे दौड़ोगे, जब शेरों के सिर पर ही बन आयी है तो फिर भाग कर क्या जाना?)[83]

ये ही पंक्तियाँ भगत सिंह को प्रेरित करती थीं। इनमें बलिदान की खुशबू भरी हुई थी। लेकिन असली चीज़ थी 'सोच'। समझ कि ब्रिटिश राज का चरित्र क्या और कैसे लड़ें इस ज़ालिम से? जबकि हमारे देश और समाज की यह स्थिति है :

रहे ग़र्क हिंदू–मुसलमान सभी, आया जब से राज फ़िरंगियों का।
रद्दी झगड़ों में मशगूल हुए जैसे काम हो वेश्या स्त्रियों का।
पैदा होकर एक ही देश में, बुरा काम पकड़ा गुटबंदियों का।
छूतछात अंदर ऊँच–नीच बनकर, उलटा काम किया फिर के बंदियों का।
गया देश का भूल प्यार हमें, हुआ असर जो ख़राब सोहबतों का।
कैसे 'ग़दर' अख़बार की सिफ़्ट कहें आकर पता दिया अच्छी बातों का।
सिर पे बाल न छोड़ा एक ज़ालिम ने, झगड़ा छेड़ा तुमने कंघियों का।
आओ, अक्ल और इल्म के साथ लड़ें, जैसे काम हो सयाने नीतिवानों का।

क्या इसका संबंध वाम–चेतना से नहीं जोड़ा जाना चाहिए?

---

[80] देखें, विशाल संग्रह, ज्ञानी केसर सिंह, *ग़दर लहर दी कविता.*
[81] चमनलाल (2007) : 75.
[82] वही : 75.
[83] वही : 77.

—इंग्लिश कौम भाइयों बुरी डायन, हमारी गर्दन का मनका तोड़ती है।

—मिलो देश की ख़ातिर हिंदू-मुसलमानों, बहुत दुःख देखा तंग-दिली का।[84]

क्या ये भाव और संवेदना उस नवजागरण का अंग होने लायक नहीं जिसमें 1857 की राज्यक्रांति को प्रथम चरण माना गया है ?

回回回

इन प्रामाणिक तथ्यों पर भी ध्यान जाना चाहिए कि पार्टी का बाक़ायदे संगठन था, संविधान भी और सिद्धांत भी।

ग़दर-पार्टी के संस्थापक सदस्य थे:-

1. सोहन सिंह भकना : अध्यक्ष
2. केसर सिंह : उप-अध्यक्ष
3. लाला हरदयाल : महासचिव और सम्पादक उर्दू ग़दर
4. करतारसिंह सराभा : सम्पादक पंजाबी ग़दर
5. बाबा ज्वाला सिंह : उप-अध्ययन
6. बाबा वैशाखा सिंह
7. बलवंत सिंह
8. पं. काशीराम : (कोषाध्यक्ष)
9. हरनाम सिंह टुण्डीलाट
10. जी.डी. वर्मा
11. लाला ठाकुरदास (धूरी) : उप-सचिव
12. मुंशीराम : संगठन सचिव
13. भाई परमानंद
14. निधान सिंह चुग्घा
15. संतोख सिंह
16. मास्टर ऊधम सिंह
17. बाबा हरनाम सिंह
18. करीम बख़्श
19. अमरचंद- बंदर मास्टर
20. रहमत अली
21. वी.जी. सिंह[85] (आदि)

प्रचार साहित्य (पंजाबी) के लिए देखें—

1. *ऐलाने जंग- 1915*
2. *तीन पत्तर (पत्र)*
3. *ग़ुलामी दा ज़हर*
4. *इंडियन पीजंट*

[84] विस्तार के लिए देखें, हरीश पुरी (1982), *ग़दर मूवमेंट,* जी.एन.डी.यू. अमृतसर.

[85] वही.

1936 में अमृतसर रेलवे स्टेशन पर हथकड़ी–बेड़ी में जकड़े ग़दर पार्टी के क्रांतिकारी, जिनमें दायें से दूसरे हैं पार्टी–अध्यक्ष सोहन सिंह भकना।
सौजन्य से : पोलैंण्ड ट्रिब्यून (अमरजीत चंदन के संग्रह से)

5. *बराबरी दा अर्थ*
6. *नवें ज़माने दे नवें आदर्श*
7. *रूसी ग़दरियाँ दे समाचार*
8. *हिंदुस्तान ग़दर दा स्पेशल ऐलान*
9. *ग़दर ढंढोरा*
10. *शाबास*[86]

ग़दर लहर दी कविता वग़ैरह के विपरीत ग़दर–पार्टी को समझने के लिए इन पुस्तिकाओं से गुज़रना बेहतर होगा। ग़दर–पार्टी का झण्डा भी देखना होगा— है यह भी तिरंगा, लेकिन इस पर चिह्न है क्रॉस करती हुई दो तलवारें। *ग़दर दी गूँज* के आवरण भी देखने होंगे जो तलवारों से बने थे। यहाँ भी भारत माता है लेकिन बेड़ियों में जकड़ी हुई नहीं, तलवार सूँतती हुई।[87] अंतर्वस्तु और रूप की व्याख्या ये आवरण करते हैं। अगर ग़दर के नाम से कम्युनिस्ट पार्टी में रुचि हो तो वह भी आज मौजूद है।[88] उसका मुखपत्र भी है— 'ग़दर ज़ारी है।'[89] लेकिन प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक रामविलास शर्मा व उनके पीछे खड़े उनके समस्त श्रद्धालु कभी इस पार्टी के सदस्य नहीं रहे। उनका सम्पूर्ण हिंदी–नवजागरण सम्प्रदाय भी इससे नावाक़िफ़ है, क्यों? क्योंकि वे रामविलास शर्मा की चिंतन–परिधि के बाहर देखना–पढ़ना अवैज्ञानिक और ग़ैर–मार्क्सवादी समझते हैं। ग़दरी चिंतकों ने सबसे बड़ा काम यही किया कि ब्रिटिशों द्वारा बदनाम 'ग़दर' की संज्ञा को लहू से धोकर इतना चमकीला

---

[86] *सुवेनियर* (13 सितम्बर, 1967), ऑल इण्डिया रेवोल्यूशनरीज़ कांफ्रेंस.
[87] देखें, इसी लेख में *ग़दर दी गूँज* का आवरण.
[88] देखें, 'हिंदुस्तान कम्युनिस्ट ग़दरपार्टी' के दस्तावेज़.
[89] *ग़दर ज़ारी है,* प्रवेशांक 15 मई, 2007.

बना दिया कि उसकी सारी नकारात्मकता झड़ गयी और 'ग़दर' गर्व के योग्य शब्द बन गया। लेकिन हमने स्वयं इसे भुला दिया। ज़रूरत है आज उस सुनहरे अध्याय को फिर से पढ़ने की। उसकी व्याख्या और विश्लेषण की तथा इतिहास में यानी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में उसकी जगह रेखांकित करने की तथा उसकी सैद्धांतिकी पर प्रकाश डालने की ताकि हम क्रांतिकारियों की दृष्टि में भारत की पुनर्रचना को समझ सकें तथा इसलिए भी कि यह सामग्री हमारी वैज्ञानिक विरासत का ही गम्भीर अंग है।

संदर्भ

ई.एच. कार (1976), *इतिहास क्या है* (अनु. अशोक चक्रधर), द मैकमिलन कम्पनी ऑफ़ इण्डिया लिमिटेड, नयी दिल्ली.

कृष्णदत्त (2002), *कैलकटा : अ कल्चरल ऐंड लिटरेरी हिस्ट्री,* रोली बुक्स, नयी दिल्ली.

गदर ज़ारी है, प्रवेशांक 15 मई.

चमन लाल (2004) (सम्पा.), *भगतसिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज़,* आधार प्रकाशन, पंचकूला.

चाँद (1928/2002), 'विप्लव-यज्ञ की आहुतियाँ', चतुरसेन शास्त्री (सम्पा.).

चाँद (फाँसी अंक) (नवम्बर, 1928/2002), सम्पा. चतुरसेन शास्त्री.

जगमोहन सिंह एवं चमनलाल (1986) (सम्पा.), *भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज़,* राजकमल प्रकाशन.

ठाकुर रामसिंह 'काले पानी' (1970) : ग़दरी जीवन पुस्तिका, आगरा मूल पंजाबी पद के लिए देखें, चमनलाल, *ग़दर पार्टी नायक— करतारसिंह सराभा,* नैशनल बुक ट्रस्ट : 75.

पण्डित सुंदरलाल (1967), *भारत में अंग्रेज़ी राज,* भाग-1, प्रकाशन-विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली.

प्रदीप सक्सेना : 'हमारी इतिहास चेतना में दरारें', *वरिमा-2,* अक्टूबर-2011, लखनऊ.

प्रदीप सक्सेना (2012), *हमारे इतिहास में 1857,* शिल्पायन प्रकाशन, नयी दिल्ली. रामसिंह काले पानी (1988), *ग़दरी जीवन,* भगतसिंह संस्थान, आगरा.

लता मिगलानी (2012), 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' ग्रंथमाला में *स्वतंत्रता संग्राम 'ग़दर गाथा'— 'ग़दर पार्टी' का इतिहास.*

शिव वर्मा (1991), चमनलाल एवं जगमोहन सिंह द्वारा सम्पादित उपरोक्त पुस्तक की प्रस्तावना.

सुवेनियर (13 सितम्बर, 1967), ऑल इण्डिया रेवोल्यूशनरीज़ कांफ्रेंस.

हरीश पुरी (1982), *ग़दर मूवमेंट,* गुरु नानक देव युनिवर्सिटी, अमृतसर.

'हिंदुस्तान कम्युनिस्ट ग़दरपार्टी' के दस्तावेज़.

हिंदू पंच (बलिदान अंक) (1930/1977), सम्पा. कमलादत्त पाण्डेय.

ज्ञानी केसर सिंह, *ग़दर लहर दी कविता.*